# दायित्व निर्वाह की प्राचीरों में बंद होती स्त्री आकांक्षा की कथा : पचपन खम्भे लाल दीवारें

**डॉ. सुषमा सहरावत,**

*असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,*
*कमला नेहरू कॉलेज,*
*दिल्ली विश्वविद्यालय*

## शोध सारांश

*उषा प्रियंवदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास मध्यमवर्गीय परिवारों में बढ़ती जा रही आर्थिक कठिनाइयों और उनमें निरन्तर पिसती तथा उनसे लगातार जूझती नारी की व्यथा को सक्षम अभिव्यक्ति प्रदान करता है। आधुनिक जीवन में जाने–अनजाने नारी किस अन्तर्व्यथा से जूझ रही है उसका सूक्ष्म और करुण चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। यह उपन्यास एक ऐसी नौकरीपेशा युवती की करूण कथा है जो अपने परिवार के भरण–पोषण हेतु अपनी तमाम इच्छाओं का दमन कर देती है।*

उषा प्रियंवदा का उपन्यास 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' (1961) एक ऐसी नौकरीपेशा युवती की त्रासदी है जो अपने परिवार के भरण–पोषण हेतु अपनी तमाम इच्छाओं का दमन कर देती है और आजीवन अविवाहित रहकर अपने को कॉलेज की उन्हीं चिरपरिचित प्राचीरों में बंद कर लेती है।

वस्तुतः यह उपन्यास सुषमा के माध्यम से मध्यमवर्गीय परिवारों में आर्थिक संकट से जूझने वाली एक ऐसी स्त्री की त्रासद कथा है जो परिवार में एकमात्र कमाऊ सदस्य है और जिसकी आय पर ही पूरे परिवार का खर्च चलता है। माता–पिता, भाई–बहन सभी उसी पर निर्भर करते हैं और अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए सुषमा जैसी युवतियों को अपना सब कुछ त्याग कर देना पड़ता है। विडम्बना यह है कि स्वयं उसके माता–पिता भी नहीं चाहते कि उनकी बेटी की शादी हो क्योंकि एकमात्र कमाऊ बेटी की शादी कर देने का मतलब है परिवार के अन्य सदस्यों का पूर्ण रूप से आर्थिक अभावग्रस्त हो जाना। यदि घर का एकमात्र कमाने वाला सदस्य ही परिवार से पृथक हो जाएगा तो बाकि परिवार का भरण–पोषण कैसे होगा इसी स्वार्थ भावना के चलते सुषमा तैंतीस वर्ष की हो जाती है किंतु उसके माता–पिता उसकी शादी करने के स्थान पर अपनी छोटी बेटी नीरू की शादी को लेकर चिंतित रहते हैं। नीरू की शादी हो जाती है और बड़ी बेटी कुँवारी ही रह जाती है। अतः सुषमा के जीवन की यह बहुत बड़ी त्रासदी है कि जिस परिवार की उदरपूर्ति के लिए वह विवाह के सूत्र में बँधना नहीं चाहती थी, बाद में वहीं परिवार सुषमा की सहज और स्वाभाविक आवश्यकता के विषय में उदासीन हो जाता है। आज की आर्थिक समस्या और विषमता ने मनुष्य को कुछ इस प्रकार विवश किया है कि जानबूझकर मनुष्य सारी बातों को उपेक्षित दृष्टि से देखता है।[1] यद्यपि कृष्णा मौसी बार–बार सुषमा को अपना भला सोचने के लिए समझाती रहती है किंतु सुषमा पारिवारिक उत्तरदायित्वों में इस कदर बंधी है कि चाहकर भी निकल नहीं पाती। वह जानती है कि घर को

उसकी मदद की जरूरत है क्योंकि पिताजी को पेंशन मिलती ही कितनी है? उसमें तो दो वक्त दाल–रोटी न चले। मैं भी अगर न करूँ तो किसके आगे हाथ फैलाएंगे?[2] पर सुषमा को स्वयं पता है कि उसके यह शब्द सिर्फ अपने मन को समझाने के लिए ही है क्योंकि उसके अन्तर्मन में भी शादी करने की इच्छा है। जब ''अपने परिवार का सारा बोझ अपने ऊपर लिये, सुषमा कौंपने लगती। तब वह चाह उठती कि दो बाँहें उसे भी सहारा देने को हों, इस नीरवता में कुछ अस्फुट शब्द उसे भी संबोधन करें।''[3] उसने नारायण को केंद्र बनाकर एक स्वप्न संजोया था जो पूरा न हो सका। अब उसके जीवन में नील कश्यप के आगमन ने फिर से उसकी इच्छाओं व आकांक्षाओं को उदीप्त कर दिया। था। यहाँ त्रासदी यह है कि स्वयं उसकी माँ भी उसके जीवन में आए हुए बिखराव को नहीं समझ पाती अपितु उसका सारा ध्यान अन्य बच्चों पर ही केन्द्रित रहता है और उपेक्षित महसूस करती हुई सुषमा अन्दर–ही–अन्दर पीड़ा के घूंट पीती रहती है। असल में, ''उसकी माँ स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित है। प्रारम्भ से ही वह ऐसी थी अथवा परिस्थितियों ने उसे स्वार्थी एवं संकीर्ण बना दिया है, यह निश्चित नहीं, किंतु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वह अवश्य स्वार्थी है। सुषमा की आय से घर चलता है और आय के एकमात्र स्रोत को माँ किसी भी हालत में खोना नहीं चाहती। इसलिए सुषमा के विवाह का प्रसंग भूलकर भी नहीं चलाती। प्रसंग चल जाए तो सुषमा पर सारा दोष डाल स्वयं एक किनारे हो जाती है कि जब सुषमा ही विवाह करने को राजी नहीं होती तो मैं क्या करूँ।''[4] यही नहीं एक माँ ही अपनी बेटी की इच्छा व आकाँक्षा को नहीं पहचानती या फिर साफ तौर पर कह सकते हैं कि पहचान कर भी जानना और समझना नहीं चाहती। यही नहीं जिस व्यक्ति से सुषमा प्रेम करती है उसी के साथ उसकी माँ अपनी अन्य बेटी का विवाह करवाने का प्रस्ताव भी सुषमा के ही समक्ष रखती है। परिवार के लिए तो सभी बेटियाँ उसी स्थान और व्यवहार की अधिकारिणी होती हैं। माता–पिता को कोई भी सन्तान कम या अधिक प्यारी नहीं होती। ऐसी मान्यता है कि स्त्री का मनोविज्ञान और मनोजगत स्त्री ही बेहतर समझ सकती है। इसके बावजूद भी जब माँ सुषमा के प्रेमी नील को अपनी दूसरी बेटी नीरू के साथ विवाह के निमित्त देखती है तो दोनों बेटियों के प्रति माँ के व्यवहार में जाने–अनजाने पक्षपात झलकने लगता है। विडम्बनात्मक स्थिति तो यह है कि माँ सुषमा की छोटी बहन के विवाह की चर्चा स्वयं सुषमा से करती है और कहती हैं कि वह नीरू का विवाह नील से करवाने की दिशा में सोचे। सहृदय व्यक्ति अनुमान लगा सकता है कि इससे सुषमा के हृदय को कितनी पीड़ा पहुँची होगी। और जब सुषमा अपने हृदय के इस शूल की अभिव्यक्ति भी नहीं कर पाती तो उसकी यह पीड़ा कई गुना बढ़ जाती है और उसका जीवन और भी करुण हो उठता है। वस्तुतः इस सबके पीछे कारण केवल एक ही था कि घर की मुख्य आय सुषमा का वेतन ही थी। सुषमा कॉलेज में अध्यापिका तथा गर्ल्स हॉस्टेल की वार्डन थी। समूचा परिवार यहाँ ऐसा आभास देता है। मानो सुषमा हाड़–माँस की व्यक्ति न होकर मात्र धनोपार्जन का साधन है।

वस्तुतः मनुष्य को यंत्र मान लेना बहुत ही दुखद स्थिति है। मनुष्य यंत्र की भाँति हृदयहीन नहीं हो सकता। उसका अपना एक मनोजगत् है। उसका अपना एक भीतरी संसार होता है जिसमें भाँति–भाँति के भावकुसुम खिलते–मुरझाते रहते हैं। सुषमा के परिवार का ध्यान कभी भी सुषमा के इस जगत की ओर नहीं जाता जबकि उनका उसके साथ निकटतम सम्बन्ध है। वह उनकी आत्मजा है। उसे बेजान कलपुर्जे में तब्दील कर देना सुषमा के लिए अत्यंत कष्टकर और निराशाजनक हो जाता है। रुपये लेकर भी यदि वे सुषमा के भीतरी भावों का समुचित मूल्यांकन कर पाते तो भी किसी सीमा तक स्वीकार्य था किंतु उनकी स्वार्थी आँखें परिवार के खर्चे और

सुषमा के वेतन के योग–जोड़ से तनिक भी आगे नहीं बढ़ पातीं। सुषमा स्वयं इस स्थिति से अनभिज्ञ नहीं हैं। वह अच्छी तरह जानती है कि ''यदि पिताजी चाहते तो क्या उसका विवाह नहीं कर सकते थे। लोग लाख प्रयत्न कर बेटी के ब्याह का सामान जुटाते हैं। क्या उसी के पिता अनोखे थे। बात असल यह थी कि उन्होंने यह चाहा ही नहीं कि सुषमा की शादी हो, उनके अन्तर्मन में यह बात अवश्य होगी कि सुषमा से उन्हें सहारा मिलेगा।''[5] सुषमा के मामा द्वारा उसकी शादी करीब–करीब तय कर दिए जाने के पश्चात् भी उसके पिता द्वारा रिश्ता पक्का करने में ढील दे देने के पीछे उनकी स्वार्थी प्रवृत्ति ही विद्यमान थी क्योंकि उस समय उनकी सेवा–निवृत्ति में मात्र तीन वर्ष ही शेष रह गए थे और बच्चे छोटे होने के कारण ऐसे समय यदि सुषमा की शादी कर दी जाती तो उनकी आर्थिक व्यवस्था गड़बड़ हो जाती। यही स्वार्थ भावना ही माता–पिता को सुषमा की ओर से निश्चित कर देती है।

सुषमा की पीड़ा अव्यक्त पीड़ा है। वह चाहकर भी उसे अभिव्यक्त नहीं कर पाती। वह अपने साथ हो रहे शोषण को अच्छी तरह जानती भी है और समझती भी है किंतु किसी से अपनी पीड़ा नहीं कह पाती है। सुषमा की खीझ और झुंझलाहट भी उसी सत्य पर से पर्दा उठाती है जिसे उसने दुनिया की आँखों से छिपाकर मन में दबा रखा था। वह स्वयं जानती है कि माँ की ''बात पर झुंझलाना अपने मन की गाँठ को स्वीकार करना है। – वह गाँठ जो सबसे छिपाकर सुषमा पालती आई है। वह एक तरुण किशोरी का स्वप्न था, जो कि अनुकूल जलवायु न पा कुम्हला गया।''[6] सुषमा ने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि उसकी शादी नहीं होगी और उसे आजीवन एकाकी होकर रहना पड़ेगा। किंतु वास्तविकता तो यही थी जिसके प्रकाश में उसके भविष्य का अंधकार स्पष्ट हो गया था। सुषमा के इन शब्दों में उसकी हृदयगत पीड़ा अभिव्यक्त हुई है – ''.... मेरी ज़िन्दगी खत्म हो चुकी है। मैं केवल साधन हूँ। मेरी भावना का कोई स्थान नहीं।''[7] इस तरह सुषमा अपने प्रति अपने ही परिवार की असंवेदनशीलता से अनभिज्ञ नहीं है। परिवार द्वारा उसकी पीड़ा और दुःख को न समझ पाना सुषमा की व्यथा को और बढ़ा देता है। माता–पिता, भाई–बहन सभी उसे मात्र एक साधन से अधिक महत्त्व नहीं देते। कुँवारी रह गई प्रौढ़ा मिस शास्त्री के जीवन के खोखलेपन को गहराई से अनुभव करती हुई सुषमा जानती है कि पैंतालीस वर्ष की आयु में शायद वह भी कुत्ता या बिल्ली पाल लेगी और उसे सीने से लगाकर रखेगी। उसके इन शब्दों में उसके वर्तमान की ही नहीं वरन उसके भविष्य की भी त्रासदी झलक उठी है। ''यह कॉलेज, ये खम्भे, मेरी डेस्टिनी हैं।''[8] वस्तुतः आधुनिक जीवन की यह बहुत बड़ी विडम्बना है कि जिस कार्य को हम नहीं करना चाहते अथवा जिसे करने में हमें कष्ट होता है वही सब करने को हम बाध्य रहते हैं। सुषमा के जीवन की भी यही विडम्बना है कि वह विवाह करना चाहती है पर कर नहीं सकती, जीना चाहती है पर जी नहीं सकती। एक तो स्वयं उसके माता–पिता ही उसकी शादी करने के इच्छुक नहीं होते और दूसरे, उसे हॉस्टेल की वार्डनशिप से हटाने के कुचक्र में लिप्त लोग नील के नाम पर उस पर चरित्रहीनता का आरोप लगाने में देर नहीं लगाते। वार्डनशिप से इस्तीफा देने का अर्थ था पूरे आठ सौ रुपये का नुकसान यानी उनके आर्थिक हालात और भी खराब हो जाते और अभी तो सुषमा को नीरू की शादी के लिए लिया गया कर्ज भी अकेले ही चुकाना था। अतः वार्डनशिप छोड़ने में असमर्थ सुषमा नील को ही विस्मृत कर देना उचित समझती है। विवाह के निकटतम बिन्दु तक नील से सम्बद्ध हो जाने के पश्चात् भी उसे पुनः कर्तव्यबोध के कारण अपने दायित्व निर्वाह पर आ जाना पड़ता है। यदि उसका विवाह हो जाता तो उसके जीवन की दिशा ही बदल जाती निराशा और अंधकार से

निकलकर वह आशा और उमंगों से भरी उल्लासपूर्ण जिन्दगी की ओर अग्रसर हो सकती थी परंतु ऐसा नहीं हो पाता और यहीं उसकी त्रासदी है। हालांकि इसका एक कारण उन दोनों की आयु में काफी अन्तर होना भी था। सुषमा को यह विचार सालता रहता है कि वह नील से पाँच वर्ष बड़ी है और वह नहीं चाहती कि शादी के बाद नील को लगे कि सुषमा से शादी करके उसने गलती की। किंतु इसका प्रमुख कारण सुषमा जैसी उदारमना के लिए अपने घर–परिवार की जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ सकने में असमर्थ रहना ही था।

हालाँकि नील उसकी सभी जिम्मेदारियों को अपना लेने का प्रण भी करता है किंतु सुषमा यह सोचकर कि कहीं बाद में नील भावावेश में लिए गए अपने इस निर्णय से हट गया तो उसके परिवार का क्या होगा? विवाह से इन्कार कर देती है।

एक स्तर पर देखा जाए तो सुषमा आत्मपीड़न के दर्शन से ग्रस्त प्रतीत हो सकती है। ऐसा आभास होता है कि उसे 'त्यागपत्र' की मृणाल की भाँति आत्मपीडन में सुख मिलने लगा है परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। दुःख व पीड़ा जब हद से गुजर कर भी दामन नहीं छोड़ते तो व्यक्ति को उन्हीं में जीने की आदत डालनी पड़ती है। सुषमा दुःख और पीड़ा को आत्मसात करना नहीं चाहती किंतु पारिवारिक दायित्वों को ताक पर रखकर नील को अपना सकने का साहस भी वह नहीं जुटा पाती। अतः परिवार की खातिर मुट्ठियों खोलकर अपने जीवन की निधि लुटाती हुई सुषमा एक दलदल में फँसकर रह जाती है। वह छटपटाती है एवम् उससे उबरना भी चाहती है परंतु उसमें और अधिक डूबती चली जाती है। वह कहती है – ''जब हम फूल की पंखुड़ियाँ नोचकर फेंक देते हैं तब फूल को कैसा लगता होगा, मैं अब समझ पाई हूँ। उन नुची पंखुड़ियों के ढेर पर मैं बैठी हूँ।''[9] असल में सुषमा के जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण वर्ष आजीविका के प्रश्नों को सुलझाने में व्यतीत हो गए और जिस वक्त उसे नील का प्यार मिला उस समय तक उसके चारों ओर दायित्वों, कुंठाओं, पद की गरिमा और पारिवारिक ज़िम्मेदारियों की अनेक दीवारें खड़ी हो चुकी थी। इन दीवारों को तोड़ सकना सुषमा जैसी भलमनसाहत से पूर्ण युवती के लिए संभव नहीं हो सका और इसी कारण वह तमाम उम्र के लिए एकाकीपन की पीड़ा को आत्मसात् करने के लिए विवश हो जाती है। वह नील के जीवन में और नील उसके जीवन में एक कसक बनकर रह जाते हैं। यह एक तथ्य है कि ''वह नारी जो किसी भी कारण से अविवाहित रह गई है, अपनी उत्तरावस्था में घुटन, पीड़ा एवं सत्रास की अंधेरी अन्तहीन सुरंग से गुज़रती है। वह महज एक 'क्रौटन का पौधा' बनकर रह जाती है। शनैः शनैः उसके भीतर की स्निग्धता, कोमलता, सरसता सूखने लगती है और उस रिक्त स्थान में भरने लगती है कर्कशता और कठोरता।''[10]

सुषमा अपने उत्तरदायित्वों का बखूबी निर्वाह करती है किंतु क्या उसके परिवार का यह दायित्व नहीं बनता था कि वह भी सुषमा की विवशता को समझे और उसकी अभिलाषाओं का दमन न होने दें। इसी स्थिति को लक्ष्य करके ही नील सुषमा से कहता भी है कि तुम्हारा परिवार ''तुम्हारा अनड्यू एडवान्टेज लेता है।''[11] माना कि उसके परिवार की भी कुछ आर्थिक मजबूरियाँ या विवषताऐं रही होंगी किंतु इन्हीं विवशताओं के कारण ही सुषमा का जीवन कॉलेज के पचपन खम्भों और लाल दीवारों में बंद होकर रह जाता है। इस तरह ''वह पचपन खम्भों वाला कॉलेज ही मानो उसकी नियति है। जीवन में बहुत कुछ बदल जाएगा बह जाएगा, नहीं बदलेगी केवल सुषमा, कॉलेज की उस बिल्डिंग की तरह पचपन खम्भों की तरह उसके जीवन के खम्भे भी निश्चित ही हैं। कॉलेज–बिल्डिंग के रंग की भाँति उसके जीवन का भी एक ही रंग होगा। कमाना और कमाकर पैसे घर भेजना।''[12] कर्त्तव्यपालन के

लिए ही सुषमा अपने समस्त सुखों का त्याग कर देती है और भविष्य की अनिश्चितता को लिए एकाकी, नीरस व घुटन भरा जीवन जीने के लिए बाध्य होकर रह जाती है।

इस प्रकार यह उपन्यास मध्यमवर्गीय परिवारों में बढ़ती जा रही आर्थिक कठिनाइयों और उनमें निरन्तर पिसती तथा उनसे लगातार जूझती नारी की व्यथा को सक्षम अभिव्यक्ति प्रदान करता है। आधुनिक जीवन में जाने–अनजाने नारी किस अन्तर्व्यथा से जूझ रही है उसका सूक्ष्म और करुण चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। यद्यपि ''सुषमा स्वाभिमानी तथा आत्मनिर्भर चरित्र है, पुरानी लीकों को तोड़ती हुई घर बाहर का दोहरा व्यक्तित्व वहन करती हैं लेकिन उच्च शिक्षिता और समाज में अपनी हैसियत अर्जित करने के बावजूद घर और सामाजिक मर्यादाओं को तोड़ नहीं पाती। घर का दायित्व उसे संस्कार वश अपने किसी ठोस निर्णय पर पहुँचने नहीं देता।''[13] इस तरह कर्त्तव्य अथवा दायित्व निर्वाह की वेदी पर सुषमा अपनी निजी आशाओं की बलि दे देती है। अपनी आकांक्षाओं के संसार को वह जानबूझकर बंद करने के लिए विवश हो जाती है यद्यपि भीतर से वह ऐसा करना कदापि नहीं चाहती थी। भावना, इच्छा तथा कर्त्तव्य के मध्य जूझती हुई सुषमा अपनी आशाओं व आकाँखाओं की कब्र पर पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए अग्रसर होती है।

## संदर्भ सूची


1. हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन, डॉ. अमरप्रसाद जायसवाल, साहित्य निलय, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1994, पृ. 67.
2. पचपन खम्भे लाल दीवारें, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1972, पृ. 14.
3. वही, पृ. 32.
4. हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला, डॉ. रोहिणी अग्रवाल, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1992, पृ. 176.
5. पचपन खम्भे लाल दीवारें, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1972, पृ. 40.
6. वही, पृ. 17.
7. वही, पृ. 68.
8. वही, पृ. 125.
9. वही, पृ. 136.
10. आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास, डॉ. पारूकान्त देसाई, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1994, पृ. 12.
11. पचपन खम्भे लाल दीवारें, उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1972, पृ. 41.
12. आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास, डॉ. पारूकान्त देसाई, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1994, पृ. 127.
13. हिन्दी उपन्यास में बौद्धिक विमर्श, डॉ. गरिमा श्रीवास्तव, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1999, पृ. 127.